जाये,ऐसा कोई सटीक नियम नहीं है। अत: निर्बीज समाधि के प्रति धारणादि तीनों बहिरंग साधन हैं। इसका अन्तरंग पर-वैराग्य है,जो निर्बीज समाधि के समान निरालम्ब एवं निर्विषय है तथा जिसके दृढ़ होने पर असम्प्रज्ञात निर्बीज समाधि निश्चित ही सिद्ध हो जाती है॥ ८॥

तीनों गुण चञ्चल हैं, उनमें प्रत्येक क्षण परिणाम होता रहता है। चित्त को गुणों का कार्य कहा गया है। अत: चित्त भी कभी एक अवस्था में स्थिर नहीं रह सकता। निरोध-समाधि के समय चित्त का परिणाम कैसा रहता है? इसका विस्तार इस सूत्र में किया जा रहा है—

(११५) व्युत्थाननिरोधसंस्कारयोरभिभवप्रादुर्भावौ निरोधक्षणचित्तान्वयो निरोधपरिणाम:॥ ९॥

सूत्रार्थ— व्युत्थाननिरोधसंस्कारयो: अभिभवप्रादुर्भावौ = व्युत्थान अवस्था के संस्कारों का दब जाना और निरोध-अवस्था के संस्कारों का प्रादुर्भाव हो जाना यह, निरोधक्षणचित्तान्वय: = निरोधकाल में चित्त का निरोध-संस्कारानुगत होना, निरोधपरिणाम: = निरोधपरिणाम है।

व्याख्या— निरोध-समाधि के अन्तर्गत चित्त की समस्त वृत्तियों का अभाव हो जाता है; किन्तु उनके संस्कारों का पूर्णतया विनाश नहीं होता। उस अवधि में मात्र संस्कार ही शेष रहते हैं। इसका विवेचन प्रथम (समाधि) पाद के अठारहवें सूत्र में किया गया है। इसलिए निरोध की अवधि में चित्त व्युत्थान एवं निरोध दोनों ही तरह के संस्कार में संव्याप्त रहता है; क्योंकि चित्त को धर्मी एवं संस्कार को उसका धर्म बताया गया है, धर्मी अपने धर्म में सतत संव्याप्त रहता है, यही नियम है। इसका इसी पाद के १४ वें सूत्र में और विस्तृत वर्णन किया गया है। उस निरोध की अवधि में जो व्युत्थान के संस्कारों का दब जाना एवं निरोध संस्कारों का प्रादुर्भाव हो जाना है तथा चित्त का निरोध-संस्कारों से सम्बंधित हो जाना है, वह व्युत्थान धर्म के द्वारा निरोध धर्म में परिणत होना ही निरोध परिणाम है।

निरोध का अर्थ है- समस्त वृत्तियों का रुक जाना अर्थात् पर-वैराग्य संस्कार ही निरोध है। ये तीन परिणाम तीनों गुणों से प्रादुर्भूत समस्त द्रव्यों में तीन प्रकार के कहे गये हैं- १. धर्म परिणाम २. लक्षण परिणाम एवं ३. अवस्था परिणाम।

जिस वस्तु में ये परिणाम होते हैं, उसे धर्मी कहते हैं और वे परिणाम धर्म कहलाते हैं। निरपेक्ष धर्मी तो मात्र कारणरूपा प्रकृति ही है। दूसरे अन्य उसके सभी विकार महत्तत्त्व से लेकर पाँचों स्थूलभूत पर्यन्त सापेक्ष धर्मी हैं, इन धर्मियों में जिस तरह से ये तीनों परिणाम होते हैं, उनके उदाहरण इस प्रकार हैं —

१. धर्मपरिणाम— जैसे कुम्भकार मिट्टी को गूँथकर उससे भिन्न-भिन्न तरह के घट आदि पात्रों का निर्माण करता है। यहाँ पर मिट्टी द्रव्य धर्मी एवं घट आदि पात्र धर्म हैं। धर्मी (मिट्टी) में किसी भी तरह का परिवर्तन नहीं होता; किन्तु घट आदि परिवर्तित होते रहते हैं अर्थात् पात्र के आकार, जो भिन्न प्रकार के परिवर्तन से बने हैं, इनमें से एक-धर्म का दबना एवं द्वितीय-धर्म का प्रादुर्भाव होना ही मिट्टी का धर्म परिणाम कहलाता है।

२. लक्षणपरिणाम— जिस प्रकार से घट आदि पात्रों का आकार पूर्णरूप से मिट्टी में छिपा हुआ था, वह घट (घड़ा) बनकर प्रकट हो गया और आगे जीर्ण-शीर्ण होने पर पुन: मिट्टी में मिल जाएगा। इस तरह से मिट्टी में तीनों काल में घट आदि वर्तमान रहने से काल-भेद से धर्मी मिट्टी में तीन लक्षण परिणाम कहे गये हैं। १. अनागत (भविष्य) लक्षण परिणाम, २. वर्तमान लक्षण परिणाम ३. अतीत (भूत) लक्षण परिणाम।

३. अवस्थापरिणाम — घट आदि जीर्ण-शीर्ण होने एवं किसी भी समय टूट-फूट सकते हैं। यह जीर्णावस्था प्रत्येक क्षण होती रहती है। इसी कारण उसे अवस्था परिणाम कहा जाता है। इन परिणामों में धर्म एवं लक्षण परिणाम वस्तु के प्रादुर्भाव काल में होता है तथा अवस्था परिणाम उसके अन्त होने तक होता रहता है। अन्य दूसरे दर्शनों में गुण और गुणी को धर्म और धर्मी कहा गया है; लेकिन योग में धर्म, धर्मी शब्द कार्य-कारण के अर्थ में प्रयुक्त किये गये हैं।

चित्त त्रिगुणात्मक होने से परिणाम है, उनमें प्रत्येक क्षण वृत्तिरूप परिणाम होता है। व्युत्थान के संस्कार (क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त) चित्त के धर्म हैं। अतः वृत्तियों के निरोध होने पर भी इनका (व्युत्थान के संस्कारों का) विद्यमान रहना स्वाभाविक है। इसी तरह निरोध (पर-वैराग्य) के संस्कार भी चित्त के धर्म हैं। इन दोनों संस्कार रूपी धर्मों में से एक धर्म का दबना दूसरे का प्रकट होना धर्मी चित्त का धर्म परिणाम है अर्थात् चित्त का निरोध संस्कारों से सम्बन्धित हो जाना, व्युत्थान धर्म से निरोध धर्म में परिणत होने को ही निरोध परिणाम कहा गया है॥ ९॥

(११६) तस्य प्रशान्तवाहिता संस्कारात्॥ १०॥

सूत्रार्थ— संस्कारात् = संस्कार बल से, तस्य=उस(चित्त)की, प्रशान्तवाहिता = प्रशान्तवाहिता (स्थिति) होती है।

व्याख्या— पूर्व सूत्रानुसार जब व्युत्थान के संस्कार रूप मल सर्वथा दब जाते हैं और निरोध (पर-वैराग्य) के संस्कार प्रवर्द्धित होकर बलवान् हो जाते हैं, तब उस समय चित्त में निरोध संस्कारों की बहुलता से केवल निर्मल निरोध-संस्कार धारा प्रवाहित होती रहती है अर्थात् केवल निरोध संस्कारों का प्रवाह ही गतिशील बना रहता है। यही चित्त का प्रशान्त होना एवं एक रस प्रवाहित होना हुआ। जिस प्रकार से जलती हुई लकड़ी के समापन पर अग्नि शान्त हो जाती है, वैसे ही चित्त की प्रशान्तवाहिता स्थिति होती है, यही निरुद्ध चित्त का अवस्था परिणाम है। चित्त की प्रशान्त अवस्था में निरोध संस्कारों की दृढ़ता ही सिद्धि प्रदाता है अन्यथा निरोध के संस्कारों की न्यूनता होते ही व्युत्थान के संस्कार दबा लेंगे और कैवल्य प्राप्ति की स्थिति का लाभ अत्यन्त दुरूह हो जायेगा॥ १०॥

यहाँ इस सूत्र में चित्त के समाधि परिणाम का वर्णन किया गया है—

(११७) सर्वार्थतैकाग्रतयोः क्षयोदयौ चित्तस्य समाधिपरिणामः॥ ११॥

सूत्रार्थ— सर्वार्थतैकाग्रतयोः क्षयोदयौ = सभी तरह के विषयों का चिन्तन करने की वृत्ति का शमन हो जाना तथा किसी एक ही ध्येय विषय का चिन्तन करने वाली एकाग्रता की स्थिति का उदय हो जाना-यह, चित्तस्य=चित्त का, समाधि परिणामः = समाधि परिणाम है।

व्याख्या— जब योगी साधक का निरोध समाधि के पूर्व सम्प्रज्ञात समाधि की सिद्धावस्था होती है, तब उस समय चित्त की विक्षिप्तावस्था का शमन होकर एकाग्रता की स्थिति का प्राकट्य हो जाता है। निरोध समाधि की स्थिति के पूर्व चित्त विक्षिप्तावस्था में समस्त विषय-विकारों की तरफ दौड़ता रहता है, जब कि उस समय सत्त्वगुण की प्रमुखता होती है, तब भी रजोगुण के रहने से निरोध का अभाव ही रहता है। निरोध समाधिस्थ होने पर चित्त विषय-विकार से अलग होकर एकाग्रता की अवस्था को प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार धर्मी (चित्त) के विक्षिप्त एवं एकाग्रता दोनों ही धर्म हुए। जब विक्षिप्तावस्था में चित्त के संस्कार दब जाते हैं और एकाग्रता के धर्म (स्थिति) का उदय (प्राकट्य) हो जाता है, तब उसे ही सम्प्रज्ञात

समाधि काल में होने वाला समाधि परिणाम कहा गया है अर्थात् निर्वितर्क और निर्विचार सम्प्रज्ञात योग में एकमात्र ध्येय का ही ज्ञान होता है, चित्त को निजरूप तक का भी आभास नहीं रह पाता। अतः चित्त का विक्षिप्त अवस्था से एकाग्र-अवस्था में परिणत होना ही समाधि-परिणाम है ॥ ११ ॥

चित्त की परिपक्वावस्था में एकाग्रता के परिणाम का वर्णन इस सूत्र में किया जा रहा है—

(११८) ततः पुनः शान्तोदितौ तुल्यप्रत्ययौ चित्तस्यैकाग्रतापरिणामः ॥ १२ ॥

सूत्रार्थ— ततः = उसके पश्चात्, पुनः = फिर जब, शान्तोदितौ = शान्त होने वाली एवं उदित होने वाली, तुल्यप्रत्ययौ = दोनों ही वृत्तियाँ एक जैसी हो जाती हैं, तब वह; चित्तस्य = चित्त का, एकाग्रतापरिणामः = एकाग्रता-परिणाम है।

व्याख्या— चित्त जब विक्षिप्तावस्था से एकाग्रता की अवस्था में प्रविष्ट होता है, तब उस समय चित्त का जो परिणाम होता है, वही उसका समाधि-परिणाम कहलाता है। चित्त जब सम्यक् रूप से समाहित हो जाता है, तब उसके पश्चात् चित्त में जो परिणाम उपस्थित होता है, उसे ही एकाग्रता परिणाम कहा जाता है। उसमें शान्त होने वाली तथा उदित होने वाली वृत्तियाँ एक जैसी ही होती हैं। पूर्व वर्णित समाधि-परिणाम में तो शान्त होने वाली एवं उदित होने वाली वृत्ति में भेद होता है; परन्तु इसमें शान्त एवं उदित होने वाली वृत्ति में भेद नहीं होता है, यही समाधि एवं एकाग्रता के परिणाम में अन्तर होता है। सम्प्रज्ञात समाधि की पहली अवस्था में समाधि-परिणाम होता है और उसकी परिपक्वावस्था में एकाग्रता-परिणाम होता है। इस एकाग्रता-परिणाम की अवधि में घटित होने वाली स्थिति को ही प्रथम (समाधि) पाद के ४७ वें सूत्र में निर्विचार-समाधि की निर्मलता के नाम से व्यक्त किया गया है ॥ १२ ॥

इस सूत्र में चित्त के सदृश ही भूत-इन्द्रियों के परिणाम का उल्लेख किया गया है —

(११९) एतेन भूतेन्द्रियेषु धर्मलक्षणावस्थापरिणामा व्याख्याताः ॥ १३ ॥

सूत्रार्थ— एतेन = (पूर्व सूत्रों में चित्त के जो परिणाम कहे जा चुके हैं) इसी तरह से, भूतेन्द्रियेषु = पाँचों भूतों में और सब इन्द्रियों में होने वाले, धर्मलक्षणावस्था परिणामाः = धर्म परिणाम, लक्षण परिणाम एवं अवस्था परिणाम (ये तीनों परिणाम), व्याख्याताः = कहे जा चुके हैं।

व्याख्या— पूर्व वर्णित नवें एवं दशवें सूत्रों में तो निरोध समाधि की अवस्था में होने वाले चित्त के धर्म परिणाम, लक्षण परिणाम एवं अवस्था परिणाम का उल्लेख किया गया है तथा एकादश एवं द्वादश सूत्रों में संप्रज्ञात-योग की अवस्था में होने वाले चित्त के धर्म, लक्षण एवं अवस्था परिणाम का उल्लेख किया गया है। ऐसे ही संसार की सम्पूर्ण वस्तुओं में ये परिणाम यथावत् होते रहते हैं; क्योंकि ये तीनों गुण परिणामी हैं, इसलिए उनके कार्यों में परिवर्तन सतत होता रहना आवश्यक है। यहाँ इस सूत्र में यही प्रतिपादित किया गया है कि उपर्युक्त वर्णन से ही पाँचों भूतों एवं सभी इन्द्रियों में होने वाले धर्म, लक्षण एवं अवस्था परिणामों को जानना चाहिए। यहाँ यह जानना आवश्यक है कि सांख्य एवं योग के सिद्धान्त में कोई भी पदार्थ कारण रूप में हुए बिना प्रादुर्भूत हुए नहीं होता। जो कोई भी पदार्थ उत्पन्न होता है, वह उत्पन्न होने से पूर्व भी अपने कारण में विद्यमान था तथा लुप्त होने के पश्चात् भी विद्यमान है।

उदाहरणार्थ — जैसे गुँथी हुई गीली मिट्टी के गोले से घट (कुम्भ) रूप मिट्टी का परिवर्तन हो जाना धर्मी का धर्म परिणाम है, वैसे ही इन्द्रियों का धर्म परिणाम है। जैसे-नेत्र धर्मी को अपने धर्म, नील-पीत आदि में से किसी एक रूप को त्याग कर दूसरे रूप का ज्ञान होता है। लक्षण परिणाम काल-परिणाम को ही कहते हैं। यह तीन भेदों से युक्त-भविष्य,वर्तमान एवं भूत कालों से होता है। घट (कुम्भ) का

आकार प्रकट होने से पूर्व धर्मी मिट्टी में छिपा हुआ था। जब तक उत्पन्न नहीं हुआ था, तब तक भविष्य लक्षण परिणाम एवं घट निर्मित होकर वर्तमान-लक्षण परिणाम और जब टूटकर मिट्टी में मिल गया, तब अतीत लक्षण परिणाम युक्त कहा जाता है। इसे ऐसे ही धर्मी नेत्र के धर्म,नील-पीत आदि के ज्ञान प्रकट होने से पहले भविष्यत् काल में छिपा रहना उसका 'अगणित लक्षण परिणाम' कहा जाता है। भविष्यत् काल से वर्तमान काल में प्रादुर्भूत होना 'वर्तमान लक्षण परिणाम' है। पुनः वर्तमान अतीत में लक्षण परिणाम में छिप जाना ही 'अतीत लक्षण परिणाम' कहा जाता है।

अवस्था परिणाम वह है, जो वर्तमान लक्षण युक्त धर्म में नवीनता से प्राचीन (जीर्ण) अवस्था लाता है। यह प्रत्येक क्षण परिवर्तित होता है तथा वर्तमान लक्षण को त्यागकर अतीत लक्षण में गमन कर जाता है। जैसे बालक से युवक एवं युवक से प्रौढ़ हो जाना एक दिन में नहीं हो पाता, उसी प्रकार अवस्था का परिणाम हर समय होता रहता है। दसवें सूत्र में विवेचित निरोध समाधि के भंग होने तक का निरोध संस्कार, प्रत्येक क्षण दृढ़ होकर अन्त में कमजोर होते हुए प्रशान्त प्रवाही हो जाना ही उनका यह अवस्था परिणाम होता है। इसी तरह पञ्च भूतों पृथ्वी, अग्नि, जल, वायु, आकाश एवं इन्द्रियों में धर्म, लक्षण, अवस्था परिणामों को समझना चाहिए॥ १३॥

यहाँ इस सूत्र में धर्म एवं धर्मी के विवेचन हेतु धर्मी के स्वरूप का वर्णन किया गया है—

(१२०) शान्तोदिताव्यपदेश्यधर्मानुपाती धर्मी॥ १४॥

सूत्रार्थ— शान्तोदिताव्यपदेश्यधर्मानुपाती = अतीत (भूत), वर्तमान तथा आनेवाले धर्मों में जो अनुगत (व्याप्त) रहता (आधार रूप में उपस्थित रहता) है, वह; धर्मी = धर्मी है।

व्याख्या— द्रव्य में सतत उपस्थित रहने वाली विभिन्न तरह की शक्तियों का नाम धर्म है तथा उसके आधारभूत द्रव्य का नाम धर्मी है। इसका अभिप्राय यह है कि जिस कारण रूप पदार्थ से जो कुछ निर्मित हो चुका है, जो निर्मित हुआ है तथा जो निर्मित हो सकता है, वे सभी उसके धर्म हैं। इस प्रकार धर्म के तीन भेद हैं, वे एक धर्मी में विभिन्न रूपों में विद्यमान रहते हैं और अपने-अपने कारणों के प्राप्त होने पर उत्पन्न एवं शान्त होते रहते हैं। ये निम्नवत् हैं —

१. शान्त— शान्त धर्म वे हैं, जो अपना-अपना व्यापार (कर्म) करके भूतकाल में चले गये। जैसे- किसी घट (बर्तन) का छिन्न-भिन्न होकर (टूटकर) वर्तमान से अतीत धर्म में विलीन हो जाना।

२. उदित— उदित धर्म उन्हें कहा गया है, जो अनागत काल को त्यागकर वर्तमान काल में अपना कर्म कर रहे हैं, उदाहरणार्थ -घट (घड़े) मिट्टी में छिपा हुआ रूप था, जो अब वर्तमान काल में प्रकट रूप घट (घड़ा) धर्म है।

३. अव्यपदेश्य— जो अनागत भविष्यत् काल में शक्तिरूप से अवस्थित हुए व्यवहार में न लाये जा सके और न ही वह कहने में आ सके, जैसे मिट्टी में घट प्रादुर्भूत होने से पूर्व शक्ति रूप में छिपे रहते हैं, इनको ही अनागत (भविष्यत्काल) या आनेवाला अव्यपदेश्य कहा गया है।

धर्मों के इन्हीं तीनों- (शान्त, उदित और अव्यपदेश्य) प्रकार के भेदों में धर्मी सदैव अनुगत रहता है। किसी भी काल में धर्मी के अभाव में धर्म विद्यमान नहीं रहते॥ १४॥

एक ही धर्मी के पृथक्-पृथक् अनेकों धर्म परिणाम किस प्रकार से सम्पन्न होते हैं? यह अगले सूत्र में विवेचित किया जा रहा है—

(१२१) क्रमान्यत्वं परिणामान्यत्वे हेतुः ॥ १५ ॥

सूत्रार्थ— परिणामान्यत्वे = परिणाम की भिन्नता में, क्रमान्यत्वम् = क्रम की भिन्नता, हेतुः = कारण है।

व्याख्या— एक द्रव्य के भिन्न-भिन्न क्रमों के द्वारा भिन्न-भिन्न परिणाम उत्पन्न होते हैं, इसका भाव यह है कि किसी एक द्रव्य का एक क्रम से जो परिणाम प्रकट होता है, दूसरे क्रम से उससे भिन्न दूसरा परिणाम होता है, अन्य तीसरे क्रम से तीसरा ही परिणाम होता है। जैसे कपास से यदि वस्त्र बनाना है, तो सर्वप्रथम रुई को धुनकर बिनौले अलग करना फिर पूनी बनाकर, सूत कातकर ताना-बाना करने के बाद में वस्त्र निर्मित होगा। इस क्रम के द्वारा कपास का वस्त्र रूप में परिणत हो जाना ही परिणाम है; किन्तु हमें यदि उसी रुई से दीपक के लिए बत्ती बनानी है, तो बिनौले हटाकर थोड़ा फैलाकर बट देने से बत्ती बन जायेगी। यदि कुएँ में से जल निकालने की रस्सी बनानी है, तो सूत्र को तीन गुना करके बट देने से रस्सी बन जायेगी। इस प्रकार से वस्त्र, बत्ती तथा रस्सी बनने में क्रम के भेद हुए अर्थात् क्रमभेद के द्वारा ही कपास से वस्त्र, बत्ती एवं रस्सी के परिणाम प्रकट हुए। इसी तरह से अन्य वस्तुओं में भी परिणाम भेद समझना चाहिए।

यहाँ इससे यह ज्ञात हुआ कि क्रम में परिवर्तन करने से एक ही धर्मी भिन्न-भिन्न नाम रूप वाले धर्म से सम्पन्न हो जाता है, उसके परिणाम की भिन्नता का कारण क्रम की भिन्नता ही है और दूसरा कुछ भी नहीं। क्रम की भिन्नता सहकारी कारणों के सम्बन्ध से होती है। जैसे शीत के सम्बन्ध से जल में बर्फ रूप धर्म के उत्पन्न होने का क्रम चलता है और गर्मी के सम्बन्ध से भाप बनने का क्रम शुरू हो जाता है। पूर्व में वर्णित जो धारणा, ध्यान, समाधि है, उनको किस ध्येय वस्तु में प्रकट कर लेने से उसका क्या परिणाम प्राप्त होता है? इसका वर्णन इसी पाद के समापन होने तक किया जायेगा ॥ १५ ॥

पूर्व सूत्र में तीन तरह के परिणामों का उल्लेख किया गया है। अब इस सूत्र में सर्वप्रथम इन परिणामों में संयम करने के फल का वर्णन करते हैं—

(१२२) परिणामत्रयसंयमादतीतानागतज्ञानम् ॥ १६ ॥

सूत्रार्थ— परिणामत्रयसंयमात् = (पूर्वसूत्र में विवेचित) तीनों परिणामों में संयम करने से, अतीतानागतज्ञानम् = अतीत (भूत) और अनागत (भविष्य-होनहार) का ज्ञान (हो जाता है)।

व्याख्या— पूर्व सूत्र में कहा जा चुका है कि संसार के सभी पदार्थ धर्म, लक्षण एवं अवस्था परिणाम के अन्तर्गत रहते हैं, जब योगी-साधक धर्मादि इन तीनों परिणामों को लक्ष्य में रखकर संयम (धारणादि) करता है, तब उनके सिद्ध होने पर भूत, भविष्य एवं वर्तमान तीनों काल का ज्ञान प्राप्त हो जाता है। इसका अभिप्राय यह हुआ कि जिस वर्तमान पदार्थ के सन्दर्भ में योगी-साधक जब यह जानना चाहे कि इसका मूल कारण क्या है तथा यह किस प्रकार से बदलती हुई कितने समय में वर्तमान रूप में आयी है एवं भविष्य में किस तरह बदलती हुई कितने काल में किस प्रकार अपने कारण में लीन होगी? तब ये सभी बातें उपर्युक्त तीनों परिणामों में संयम कर लेने से ज्ञात कर सकता है। जब योगी-साधक को समय से पूर्व या पश्चात् की बातों (तथ्यों) का ज्ञान हो जाता है, तब यदि किसी भी तरह की विघ्न-बाधाएँ आने वाली होती हैं, तो उनका निवारण भी वह समय रहते उचित उपाय से कर लेता है ॥ १६ ॥

आगे के सूत्रों में ऐसी ही दूसरी अन्य विभूतियों का विवेचन किया जा रहा है—

पं. तपोनिष्ठ श्रीराम शर्मा आचार्य, एवं माता भगवती देवी शर्मा, योग दर्शन, युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट, मथूरा, संवत् 2057, पृष्ठ 70 से 74।